Original Article
ISSN (Online): 2582-7472

ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts
January 2024 5(1), 1059-1069

Speech in Vedic literature

वैदिक वांग्मय में वाक्

Dr. Krishna Chand Pandey

डॉ. कृष्ण चंद पांडे
Assistant Professor, Bhadanta Anand Kausalyayan Buddhist Studies Center, Mahatma Gandhi International Hindi University.

Corresponding Author
Dr. Krishna Chand Pandey
डॉ. कृष्ण चंद पांडे

DOI:

https://doi.org/10.29121/shodhkosh.v5.i1.2024.2653

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

Copyright: © 2024 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.

ABSTRACT

English: Speech has had a place in the Indian tradition of thought since the beginning. In the oldest Vedic literature, Rigveda, we find verses that propound the importance of speech. Along with this, we also find the seeds of thought that connect speech with the mystery of creation. After this, in the later Vedic literature, we find many stories related to speech that refer to the various levels of speech. Along with this, in the later Brahman and Aranyaka literature, the process of analysis of spoken language also seems to have begun; because in these, we find discussions here and there on the division of vowels and consonants, division of voiced consonants into voiced and unvoiced, division of sound and vowels, and division of letters. In fact, the Indian tradition has been a speech-centric tradition since the beginning, so not only has speech been given divinity in it, but it has also been imagined that the ultimate position can be attained through the precision of speech and the practice of speech.

Hindi: भारतीय चिंतन-परम्परा में वाक् का स्थान प्रारम्भ से ही है। प्राचीनतम वैदिक वांगमय ऋक् संहिता में वाक् के महत्त्व को प्रतिपादित करने वाले सूक्त मिलते हैं, साथ ही वाक् को सृष्टि के रहस्य के साथ जोड़ने वाले चिंतन का बीज भी मिलता है। इसके अनंतर उत्तरकालीन वैदिक वांगमय में वाक् से सम्बद्ध अनेक आख्यान मिलते हैं जो वाक् के विभिन्न स्तरों का निर्देश करते हैं। साथ ही इस उत्तरक़ालीन ब्राह्मण एवं आरण्यक वांगमय में, बोली जाने वाली भाषा के विश्लेषण की प्रक्रिया का भी आरम्भ हो गया लगता है; क्योंकि इनमें स्वर-व्यंजन-विभाग, व्यंजनों के घोष-अघोष-स्पर्श ऊष्म-विभाग, अंत:स्थ और स्वर विभाग तथा अक्षर-विभाग की चर्चा जहाँ-तहाँ मिलती है। वस्तुत: भारतीय परम्परा प्रारम्भ से ही वाक्-केंद्रित परम्परा रही है, इसलिए न केवल उसमें वाक् को देवत्व प्रदान किया गया है, बल्कि वाक् की परिशुद्धता और वाक् की साधना के द्वारा ही परमपद प्राप्त करने की कल्पना भी की गयी है।

Keywords: Speech, Vedic, Literature

भारतीय चिंतन-परम्परा में वाक् का स्थान प्रारम्भ से ही है। प्राचीनतम वैदिक वांगमय ऋक् संहिता में वाक् के महत्त्व को प्रतिपादित करने वाले सूक्त मिलते हैं, साथ ही वाक् को सृष्टि के रहस्य के साथ जोड़ने वाले चिंतन का बीज भी मिलता है। इसके अनंतर उत्तरकालीन वैदिक वांगमय में वाक् से सम्बद्ध अनेक आख्यान मिलते हैं जो वाक् के

विभिन्न स्तरों का निर्देश करते हैं। साथ ही इस उत्तरक़ालीन ब्राह्मण एवं आरण्यक वांगमय में, बोली जाने वाली भाषा के विश्लेषण की प्रक्रिया का भी आरम्भ हो गया लगता है; क्योंकि इनमें स्वर-व्यंजन-विभाग, व्यंजनों के घोष-अघोष-स्पर्श ऊष्म-विभाग, अंत:स्थ और स्वर विभाग तथा अक्षर-विभाग की चर्चा जहाँ-तहाँ मिलती है। वस्तुत: भारतीय परम्परा प्रारम्भ से ही वाक्-केंद्रित परम्परा रही है, इसलिए न केवल उसमें वाक् को देवत्व प्रदान किया गया है, बल्कि वाक् की परिशुद्धता और वाक् की साधना के द्वारा ही परमपद प्राप्त करने की कल्पना भी की गयी है।

ऋक् संहिता में मुख्य रूप से तीन सूक्त वाक् की महिमा से सीधे सम्बद्ध हैं— 1।164, 10।71, 10।125। 1।164 प्रसिद्ध 'अस्यवामस्य सूक्त' है जिसमें अनुक्रमणी के अनुसार 42, 43, 45, 49, 52- ये मंत्र विशेष रूप से वाक् देवतापरक माने गये हैं, किंतु पूरा सूक्त ही सृष्टि-चक्र के प्रवर्त्तन के रहस्य के उन्मीलन से सम्बद्ध है। उस रूप में पूरा सूक्त मंत्र-रूप वाक् को सृष्टि के मूल में देखने वाला है, विशेष रूप से 23वें मंत्र में—

गायत्रेण प्रति मिमीते अर्क मर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम्।

वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदा अक्षरेण मिमते सप्त वाणी:।।

यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि देवताओं ने विभिन्न छंदों के रूप में वाणी की प्रतिरचना की। इस सूक्त के 35वें मंत्र में यह इंगित किया गया है कि इस वेद-रूप वाणी का अनंत आकाश मंत्र पढ़ने वाला ब्राह्मण है; मंत्र के प्रयोग का स्थान ही भुवन की नाभि है। इसके 41वें मंत्र में यह कहा गया है कि गौरवर्ण की सहस्राक्षरा वाणी ने आद्यसृष्टि-रूप जल की सृष्टि की। 45वें मंत्र में यह कहा गया है कि वाक् चार प्रकार की है, जिसे केवल चिन्तनशील ब्राह्मण जानते हैं। तीन अव्यक्त हैं -चौथी व्यक्त है, उसे ही मनुष्य बोलते हैं। वहीं 49वें मंत्र में सरस्वती का आह्वान किया गया है - तुम्हारे स्तन्य से ही विश्व पुष्ट होता है; उसका पान कल्याणकारी है; वह अनेक प्रकार के रत्नों का गुण धारण करने वाला है; उससे हमें आप्यायित करो। संक्षेप में सूक्त में मंत्र पढ़ने वाले को वाक् के परम व्योम के रूप में प्रतिष्ठापित करके वाक् के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है तथा वाक् से आदिभूत समुद्र का उद्भव कराकर वाक् की आद्यसृष्टि (गौरी) के रूप में अवधारणा की गई है, तथा सहस्रपर्णा के रूप में वाक् के विस्तार के रूप में कल्पना के द्वारा वाक् को विश्वचेतना के रूप में देखा गया है और अंत में वाक् रूप सरस्वती के शक्ति-प्रवाह से शक्ति पाने की कामना की गई है।

ऋग्वेद के दूसरे सूक्त 10।71 को वाचस्पति या बृहस्पति सूक्त कहा जाता है और परम्परा में इसके ऋषि आंगिरस बृहस्पति और देवता ज्ञान कहे गए हैं। यह सूक्त कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि एक तो उत्तरवर्ती वैयाकरणों ने इसके दो मंत्रों को बहुत बार उद्धृत किया है। दूसरे, इस सूक्त में परिशुद्ध वाक् के महत्त्व के साथ-

साथ समर्थ वाक् की अर्थगर्भता और वाक्-चिंतन के द्वारा उत्तरोत्तर ज्ञान गांभीर्य की सिद्धि बतलाई गई है। इसके दूसरे मंत्र में छांदस वाणी (अंत:स्फूर्त वाणी) की परिशुद्धता में अभ्युदय की शक्ति का आधान किया गया है; क्योंकि यह शक्ति मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने वाली शक्ति है। इस सूक्त के तीसरे मंत्र में यह प्रतिपादित किया गया है कि ऋषियों के मन के भीतर प्रविष्ट वाणी को यज्ञ व्यापार ने (मनुष्य को देवता से जोड़ने वाले व्यापार ने) बाहर प्रकाशित किया। अनुकरण करने वाले ने उसमें विविध रूपांतरण किए और उसी की स्तुति में निरंतर सात प्रकार के पक्षी — मनुष्य की ऊर्ध्व आकांक्षाएँ — कूजते रहते हैं। इसके चौथे मंत्र में वाणी के अंतर्निहित सौंदर्य का वर्णन किया गया है, यथा—उसे देख कर भी कोई देख नहीं पाता, उसे सुन कर भी कोई सुन नहीं पाता, जिसको वाणी अपना मर्म सुवासा-जाया की तरह अपने-आप उद्घाटित कर दे, वही उसके अंतर्निहित सौंदर्य को परख सकता है। इस सूक्त के पाँचवे मंत्र में एक प्रकार से शब्दार्थ साहित्य की ही चर्चा है—जो शब्द और अर्थ के सम्बंध को ठीक-ठीक जानता है, उसी को वेदार्थ की साझेदारी मिलती है और जो नहीं जानता, उसके लिए यह ज्ञान-राशि जीती जागती गऊ न रहकर माया-जाल की गऊ रह जाती है, जिसे वह खड़ा तो कर सकता है, किंतु उससे दूध नहीं पा सकता।

ऋक् संहिता के 10।125 को यों तो वाक् सूक्त ही कहा गया है, और इस पूरे सूक्त में स्पष्ट रूप से वाक् को प्रेरिका शक्ति के रूप में, सर्जिका शक्ति के रूप में, पालिका शक्ति के रूप में और संहारक शक्ति के रूप में देखा गया है। आम्भृणी वाक् को इसका ऋषि माना गया है, और परमात्मा को देवता।

इस सूक्त को देखने पर यह स्पष्ट होता है कि वाक् को मंत्रशक्ति और चैतन्य शक्ति का प्रतिरूप माना गया है। यहाँ पर वाक् को अम्भृण ऋषि की कन्या बतलाने का तात्पर्य वाक् की रहस्यात्मकता ही है। जिस प्रकार भृगु और अंगिरस सोम और अग्नि के प्रतीक हैं या सोम और अग्नि की रहस्योपासना करने वाली परम्पराओं के अज्ञात प्रवर्तकों के लिए प्रयुक्त हैं, उसी प्रकार 'अम्भृण', जिसका अर्थ सोम पात्र है, अग्नि और सोम के व्यक्त और अव्यक्त मिथुनी भाव का प्रतीक है। साथ ही यह भी सम्भव है कि अम्भृण का अर्थ—अव्यक्त रूप जल को उद्वेलित करके व्यक्त सृष्टि में परिवर्तित करने वाला हो। इस रूप में इस प्रकार वाक् को आम्भृणी कहने का तात्पर्य वस्तुत: वाक् को सृष्टि प्रवर्तिका शक्ति के रूप में देखना है, जो ऋषि द्वारा मंत्र-दृष्टि की बीज-रूप शक्ति है। ऋषि भी मंत्र दर्शन के द्वारा सृष्टि व्यापार को अपने अंत:स्फूर्त शब्दों से जोड़ते हैं और वाक् इस संयोजन व्यापार का अधिष्ठात्री देवता है। वह परम चैतन्य के प्राण का स्पंदन है। इसीलिए कदाचित् वेदों को परब्रह्म का नि:श्वसित कहा गया है। तंत्रों में कुंडलिनी के रूप में जिस ऊर्ध्व संचारिणी प्राण-शक्ति की कल्पना की गई है,

उसकी अवधारणा के बीज में उपर्युक्त सूक्त की वाक्-कल्पना कही जा सकती है। एक प्रकार से परावाक् की कल्पना का प्रारम्भ यहीं से मानना चाहिए।

ऋक् संहिता के कुछ और भी प्रकीर्ण संदर्भ हैं (विशेषकर नवम मंडल के पवमान सूक्तों में), जहाँ वाक् का सोम की पत्नी के रूप में वर्णन है। सोम पत्नी के रूप में वाक् का यह संदर्भ वस्तुत: सोम के सेवन के साथ-साथ मंत्र के उल्लसित पाठ के योग का महत्त्व सूचित करता है और अधिक गहराई में जाकर निष्पीडित चैतन्य के साथ परिष्कृत वाणी के योग से रस सृष्टि का भी संकेत देता है।

ऋग्वेद 10।42।1 और 10।53।4 में वाणी को देवताओं के द्वारा असुरों पर विजय का कारण बतलाया गया है। निश्चय ही यह वाणी बोली जाने वाली परिष्कृत भाषा है। जो विकसित भाषा वाले दूसरे समुदायों से इस भाषा के व्यवहार करने वाले को श्रेष्ठ बनाती है। ऋग्वेद 10।114।8 में वाक् का सहस्र रूपों में विश्व को व्याप्त करने वाली शक्ति के रूप में वर्णन किया गया है। ऋग्वेद 10।177।2 में यह कहा गया है कि गंधर्वों ने वाक् को सृष्टि के गर्भ में आहत किया। यहाँ भी वाक् स्वरित होने वाली भाषा के संदर्भ में उपवर्णित हुई है। इसके अतिरिक्त हमें भिन्न-भिन्न प्रकरणों के संकलन से वाक् के तीन रूप ऋक् संहिता में उल्लिखित मिलते हैं—इला या इडा, सरस्वती और मही (ऋ. 1।13।9), मही के स्थान पर ऋ. 10।110।8 में भारती नाम दिया गया है। वाक् और सरस्वती का तादात्म्य —ऐतिहासिक दृष्टि से गुरुवर स्व. पंडित क्षेत्रेशचंद्र चट्टोपाध्याय ने यह प्रतिपादित किया है —इस कारण से है कि सरस्वती के किनारे ही अधिकांश ऋचाओं का प्रस्फुरण हुआ । आध्यात्मिक दृष्टि से सरस्वती का अर्थ स्रोतवाली है और सृष्टि रूप में वाक् शक्ति का एक प्रवाह है। श्री अरविंद ने अपने 'ऑन दि वेद' (पृ 110-11) पुस्तक में इडा की ऋत की संवर्धक शक्ति के रूप में, सरस्वती की सत्य की संवर्धक शक्ति के रूप में और मही या भारती की वृहद (विस्तार या वितान) की संवर्धक शक्ति के रूप में व्याख्या प्रस्तुत की है जो समीचीन है। साथ ही इन तीनों को क्रमश: द्यु लोक, अंतरिक्ष और पृथ्वी धारिका शक्तियों के रूप में भी देखा जा सकता है; क्योंकि अन्यत्र जैमिनीय संहिता 2-4-22-11 में तथा शतपथ ब्राह्मण 14-4-3-11 में द्यु लोक, अंतरिक्ष और पृथिवी के रूप में वाक् का तदात्म्य उपवर्णित हुआ है। मही और भारती का तदात्म्य उचित है; क्योंकि अग्नि को भारत कहा गया है, और अग्नि पार्थिव देवता है। संभवत: भरतों ने सबसे प्रमुख रूप से अग्नि की उपासना की और अग्नि को होता और हव्यवाहन के रूप में अपनी स्तुतियों का केंद्र बनाया। इसीलिए ब्राह्मणों में अग्नि का नाम ही भारत पड़ा और शायद इस भारत अग्नि की साधना पर बल देने के कारण पूरे देश का नाम

(भारत कालांतर में पड़ा हो, शत. ब्राह्मण 1।4।2।2; तैत्ति. ब्रा. 3।5।3।1) और वाक् का भी अग्नि के साथ तादात्म्य अनेक स्थलों पर मिलता है (तैत्ति. ब्रा. 3।10।8।4; जै. सं. 2।1।28।3; शत.ब्रा. 3।2।2।13, 4।2।1।28, 6।2।।2।13; गोपथ ब्रा. 2।4।11)। वस्तुत: अग्नि का या पृथिवी का जिस वाक् से तदात्म्य है, यह वाक् वही वाक् है, जिसका मनुष्य व्यवहार करते हैं अर्थात् जो यज्ञ कि भाषा है, जो मनुष्य को विश्व से जोड़ने वाली बाह्य भाषा है, सरस्वती (ज्ञान) का अंतरिक्ष से तादात्म्य मध्यमा वाक् के स्तर को सूचित करता है जिसमें प्रवाह तो है किंतु व्यक्ता नहीं है। वाक् के जलीय रूप पर यह बल और अंतरिक्ष में भी अव्यक्त जल रूप में मेघों का दर्शन वाक् के उस स्तर के साथ मेल खाते हैं, जिस स्तर में एक आकांक्षा ज्ञान रूप में परिणत हो रही है और शब्द तथा अर्थ विविक्त हो रहे हैं और वाक् का आकाश से तादात्म्य या सुपर्ण से तादात्म्य, जिसके बारे में आगे चर्चा की जाएगी, वस्तुतः पश्यन्ति वाक् के, या इच्छा शक्ति के—रूप वाक् के अनंत अछोर विस्तार और उसकी प्रकाश रूपता वाले स्तर को द्योतित करता है। इन तीनों का अतिक्रमण करने वाली शक्ति जो आकाश की भी सृष्टि करती है, परा वाक् है।

संक्षेप में ऋक् संहिता में वाक् सृष्टि की प्रेरक मानवीय अस्तित्व एवं यज्ञ प्रक्रिया की प्रेरक शक्ति के रूप में परिनिष्ठित हो गयी थी। वाक् का यह त्रिवृत्करण देव और विश्व के त्रिविध विभाजन के साथ भी मेल खाता है। इसी त्रिविध करण का विस्तार ब्राह्मण वांग्मय में अनेक आख्यानों में निदर्शित रूप में मिलता है। इन आख्यानों को चार मुख्य कोटियों में बाटा जा सकता है-

1—सृष्टि-प्रक्रिया से सम्बंधित आख्यान;

2—वाक् और मन (या सोम) से तादात्म्य या परस्पर सपेक्षता निदर्शित करने वाले आख्यान;

3—देवासुर-संग्राम से सम्बद्ध वाक् परक आख्यान;

4—वाक् को मानव-व्यापार या मानव-वागिन्द्रिय से सम्बद्ध करने वाले आख्यान।

चौथी कोटि के आख्यान संख्या में कम होते हुए भी भाषा की सामाजिक परिकल्पना के प्रारम्भ की दृष्टि से बहुत महत्त्व रखते हैं। पहली कोटि के आख्यानों में वाक् प्रजापति की सिसृक्षा या सृष्टि की प्रक्रिया है। एकरूप में वह पुत्री है, दूसरे रूप में पत्नी (जै. ब्रा. 2।242; ऐत. ब्रा. पच्चीसवां प्रपाठक; कौषि. ब्रा. 12।5।14, 27।111)। जैमिनीय ब्राह्मण में एक आख्यान आता है जिसमें कहा गया है कि सबसे आदि में वाक् थी। वाक् ने यज्ञ किया। उसकी आहुतियाँ ही बारह महीने बनीं। वाक् ने पुनः यज्ञ किया, आहुतियाँ तीस दिन बनीं, और इस प्रकार संवत्सर की (सावधि काल-गणना की) रचना हुयी। यह संवत्सर ही पहला यज्ञ हुआ (जै. ब्रा. 2।396)। ऐतरेय ब्राह्मण के

एक आख्यान में प्रजापति ने पृथिवी, अंतरिक्ष और द्यौ की सृष्टि की। जिससे क्रमश: अग्नि, वायु और आदित्य उत्पन्न हुए। ये ही ऋक्, यजुष् और साम में परिणत हुए। इन्हीं तीनों के सार अंश से तीन महाव्याहृतियाँ भू:, भव: और स्व: उत्पन्न हुयीं, इन्हीं को अ, उ, म् अक्षरों के द्वारा बोधित किया गया (ऐत. ब्रा. 25)।

काठक ब्राह्मण के एक दूसरे आख्यान में वाक् को प्रजापति की सहचरी कहा गया है। वाक् ने प्रजापति से गर्भ धारण किया और सोम को उत्पन्न किया। सोम को उत्पन्न करके वाक् प्रजापति में पुनः प्रविष्ट हो गई (काठक ब्राह्मण 12।5।14)। शतपथ ब्राह्मण में एक स्थल पर (14।6।10।5-6 में) वाक् को परब्रह्म कहा गया है। उसे सम्राट के रूप में सम्बोधित किया गया है जिसके वेद एवं अन्य विद्याएँ परिचर के रूप में हैं। जैमिनीय ब्राह्मण में एक स्थल पर वाक् को 'आरम्णीय अहन्'—सृष्टि का पहला दिन कहा गया है और इस रूप में उसे यज्ञ का प्रवर्तक, ऋतुचक्र का प्रवर्तक और प्रत्येक प्रकार के आकार या अभिव्यंजन का आश्रय बतलाया गया है (जै. ब्रा. 2।57) । जैमिनी ब्राह्मण के एक दूसरे 'प्रजापति-वाक्' आख्यान में (जै. ब्रा. 2।252) कहा गया है कि प्रजापति ने वाक् रची, वाक् ने एक गाय रची, प्रजापति ने इस गाय की रक्षा के लिए आठ वसुओं, ग्यारह रुद्रों और बारह आदित्यों की रचना की। प्रत्येक वर्ग ने उस गाय को एक वर्ष तक रखा और उसकी सहायता से अनेकरूपा सृष्टि का वितान हुआ।

इसी ब्राह्मण के दूसरे आख्यान में जलरूप वाक् से पृथिवी, पृथिवी से अंतरिक्ष, अंतरिक्ष से आकाश रचे दिखाए गए हैं (जै. ब्रा. 2।244)। इन सभी आख्यानों में वाक् अंतर्निहित सृष्टि-बीज है, सोई हुई सिसृक्षा का प्रथम स्पंदन है। ऋक्, यजुष् और साम—तीन संहिताओं के प्रतीक रूप में तीन प्रकार के सृष्टि-स्तरों का बोध करते हैं—पार्थिव, अंतरिक्ष और दिव्य ।

उत्तरवर्ती आगम वांग्मय में और व्याकरणशास्त्र में इन्हीं तीन स्तरों को वैखरी, मध्यमा और पश्यंती के रूप में और क्रिया, ज्ञान और इच्छा के रूप में उपवर्णित किया गया है। इन तीन स्तरों से परे है—स्पंदन-रहित आदिशक्ति, वही परावाक् है, वही प्रजापति है, वही अनिर्वचनीय देवता है, जिसके लिए संहिता के मंत्रों में 'कस्मै देवाय' या 'को अद्धा वेद' इस प्रकार के प्रश्नवाचक सर्वनाम में उल्लेख इसीलिए मिलते हैं कि वह क्या है, यह बुद्धिगम्य नहीं हो रहा है। कदाचित् इसीलिए प्रजापति को यज्ञ में आहुति 'तूष्णीम्' में दी जाती है, मंत्रोच्चारण की प्रक्रिया वहाँ नहीं होती; क्योंकि जो स्वयं मंत्रशक्ति का स्रोत हो, उसके लिए मंत्र फिर क्या हो? इस आदिशक्ति

के रूप में वाक् को जल के साथ एकाकार देखने का अभिप्राय कदाचित् यह है कि यह जीवन-प्रक्रिया के अथाह, अगोचर, प्रसुप्त, अव्यक्त और असीम विस्तार की राशि है।

इन आख्यानों में वाक् या तो सृष्टि की प्रक्रिया है या सृष्टि की समांतर सृष्टि है। वाक् की यह परिकल्पना भारतीय भाषा-दर्शन की इस मुख्य पीठिका का आधार बनती है कि भाषा एक सर्जनात्मक व्यापार है, जिसके बिना ज्ञान निश्चल, निष्क्रिय और निराकार बना रहता है तथा भाषा-जगत् अपने में पूर्ण और स्वतंत्र समांतर जगत् है, जो बाह्य जगत् को और अनुभव-जगत् को उन्मीलित करके भी उससे अपने को तटस्थ रख सकता है।

इस अव्यक्त वाक् का जब दो विपरीत दिशाओं में प्रस्फुटन हुआ तो एक सर्पराज्ञी (सर्पों की रानी) कद्रू हुई और दूसरी सुपर्णी हुई। एक पृथ्वी हुई, दूसरी द्यौ; एक सर्पों की माता हुई, दूसरी सोम की और गरुड़ की माता हुई; एक शब्द हुई, दूसरी अर्थ; एक स्थूल हुई, दूसरी सूक्ष्म; एक राग और राग-द्वेष जन्य दुःख का कारण हुई, दूसरी सुख और प्रकाश का कारण हुई (सर्पराज्ञी कद्रू और पृथ्वी के समीकरण के लिए देखिए —कौशीतकी ब्रा. 27।4; शतपथ ब्रा.3।6।2।2, तांड्य ब्रा.2।1।4।30, 4।6।9।17; तांड्य ब्रा. 4।9।6, तथा सुपर्णी का द्यौ के साथ और सोम का सौपर्ण और द्युपुत्र के समीकरण के लिए देखिए — तांड्य ब्रा. 14।3।10; जै. उप.1।1।5; कौ. ब्रा. 23।10।23)। इस वाक् के इस द्विधाविभाजन की यह स्थिति मध्यमा की स्थिति से तुलनीय है, जिसमें शब्द और अर्थ विविक्त हो जाते हैं। स्त्री और पुरूष तत्त्व, अग्नि और सोम तत्त्व पहले संपृक्त हैं। फिर इन दोनों का मिथुनीभाव ही सृष्टि की अभिव्यक्ति में प्रयोजन बनता है। अग्नितत्त्व वाक् या पार्थिव रूप है सोम। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उत्तरवर्ती ब्राह्मण-रचना के काल तक सोम अपने रस के रूप प्रयुक्त नहीं रह गया था; क्योंकि तब तक वह सोम एक तो दुर्लभ हो चुका था, दूसरे उसका प्रतीयमान अर्थ ही यज्ञ संस्था की व्याख्या में प्रमुख हो गया था। सोम वस्तुत: आह्लाद भाव है, वह किसी पत्ती का मादक रस नहीं। इसीलिए वह पुंभाव है, जबकि तेजस के आश्रय के रूप में पार्थिक वाक् स्त्रीभाव है। अग्नि और वाक् के समीकरण से सम्बद्ध तथा सोम और वाक् की परस्पर सापेक्षता से सम्बद्ध आख्यानों की संख्या बहुत अधिक है।

इन सभी आख्यानों का तात्पर्य यही प्रतीत होता है कि मंत्र-शक्ति के द्वारा आह्लाद प्राप्त किया गया। गंधर्व आह्लाद की रक्षा करने वाले इसलिए कहे गए हैं; क्योंकि वे संगीत के देवता हैं। इसीलिए वे नाद पर रीझते हैं, और किसी-न-किसी रूप में वाक् को प्राप्त किए बिना सोम को देने को प्रस्तुत नहीं होते। इन आख्यानों में वाक् दिव्यमान भाव या आह्लाद प्राप्त करने का एक प्रकृष्ट साधन है, वह लक्ष्य नहीं है। वह देवताओं की तृप्ति का प्रतीक इडा है। सोम और वाक् का यह ज़ोर ही पौराणिक कल्पना के पार्वती-परमेश्वर की संपृक्त स्थिति के

रूप में तथा अजपाजप साधना की स्थिति में विकसित होता है। इस प्रकार इन आख्यानों में वाक् की स्थिति मन में स्थित मध्यमा वाक् की स्थिति है।

वाक् से सम्बद्ध आख्यानों में तीसरी कोटि में वे आख्यान आते हैं जिनमें वाक् किसी-न-किसी रूप में देवासुर संग्राम में विजय के साधन के रूप में प्रयुक्त हुई है। यहाँ पर वाक् उच्चरित मंत्र की वाणी है। यह सत्य है कि वह साधारण भाषा नहीं है, किंतु प्रातिभ ज्ञान को प्रकाशित करनेवाली भाषा है। शतपथ ब्राह्मण (3।1।5।18-25) के आख्यान के अनुसार देवताओं और असुरों में प्रजापति के दाय के बारे में लड़ाई हुई । फिर समझौते के अनुसार बँटवारा हुआ। देवताओं ने मान लिया —असुरों ने वाणी, देवताओं ने यज्ञ चुना, असुरों ने मंत्र; देवताओं को द्यौ मिला, असुरों को पृथ्वी किंतु देवता वाक् के बिना निष्क्रिय हो गए। उन्होंने यज्ञ से कहा, वाणी को फुसलाकर लाओ। दो बार वाणी ने यज्ञ को भाग दिया। तीसरी बार वह यज्ञ के बुलाने पर आ गयी। इस बार देवताओं ने उसे आहवनीय अग्नि में छिपा दिया और वाक् से वंचित होकर असुर म्लेच्छ भाषा बकते हुए पलायन कर गए। म्लेच्छ भाषा या अश्लील वाक् का उल्लेख तांड्य ब्राह्मण (28।5।1।2)में मिलता है, जिसमें यह कहा गया है कि जब म्लेच्छ या अश्लील वाक् ने वृत्रवध में व्याघात उपस्थित किया तो इंद्र ने इस अश्लील वाक् का वध किया। इसी ब्राह्मण का एक दूसरा आख्यान है कि वाक् देवताओं से रूठकर चली गई और जल में प्रविष्ट हो गई। देवताओं ने मनाया—आ जाओ। वाक् ने यह शर्त रखी कि मैं तुम्हारे साथ चलूँगी, किंतु मनुष्य मुझे अपवित्र न करने पाए। देवताओं ने यह शर्त स्वीकार कर ली और तब वाक् देवताओं के पास चली आई (तांड्य ब्रा. 6।5।10)। इस शृंखला के और भी आख्यान हैं। उनके विस्तार में न जाकर इतने से ही स्पष्ट रूप से निदर्शित हो जाता है कि इन आख्यानों में वाक्, छांदस वाणी के स्तर पर उतर आयी है। वह अब भी सामान्य भाषा नहीं है, वह यज्ञ भाषा है, जो यज्ञ की सहचरी है, आर्षवाणी है, जो एक विशेष प्रकार के अपरोक्षानुभव से प्राप्त होती है, सामान्य व्यवहार की भाषा से ऊपर की स्थिति की भाषा है। इन आख्यानों में वाणी का असुरों के पास चले जाने का अभिप्राय यह लगता है कि असुरों ने मंत्र शक्ति की परम्परा जगा रखी थी, देवता भूल गए थे। पुराणों में उशना कवि, शुक्र, भार्गव और असुर गुरु—ये नाम असुरों के द्वारा वेदवाणी की रक्षा की प्रारम्भिक परम्परा की ओर कदाचित् संकेत करते हैं। 'असुर' शब्द का अर्थ होता है—प्राणवान और इसी प्राणवत्ता के कारण वे जबतक छांदस भाषा का अभ्यास रखते हैं, देवता उनसे पराभूत रहते हैं और जब देवता यज्ञ की सहायता से अर्थात् छांदस भाषा के प्रयोजन का

स्मरण करते हैं, तो वे उस वाणी को वापस पा जाते हैं और असुर परास्त हो जाते हैं। दूसरे शब्दों में एक परिष्कृत वाक् परम्परा से वंचित होकर प्राणवान होते हुए भी असुर उस परम्परा से कटकर पराभव को प्राप्त हो जाते हैं।

द्वितीय स्तर से तृतीय स्तर में वाक् के अर्थ में परिवर्तन का अभिप्राय यह भी हो सकता है कि यद्यपि वाक् यज्ञियों में प्रथम (चिकितुषी) मानी गयी थी, तथापि देवत्व की अवधारणा के साथ प्राण और मन का अधिक योग था। पर क्रमशः छांदस वाक् को देवत्व मिला और जिन असुर पुरोहितों ने इसके छंद (रहस्य) को समझा था, उन्हीं के पास पुनः देव या देव-पूजक गए, तभी इस वाक् का महत्त्व पुनः स्थापित हुआ, असुर पुरोहित का शुक्र नाम ही वाक् के उज्ज्वल रूप का परिचायक है। शतपथ ब्राह्मण (14।4।3।10—18) में वाक्, मन और प्राण की त्रिपुटी का इस रूप में उल्लेख मिलता है कि वाक् पृथ्वी है, मन अंतरिक्ष है, प्राण आकाश; वाक् ऋग्वेद है, मन यजुर्वेद है; प्राण सामवेद है, वाक् माता है; मन पिता है, प्राण दोनों की संतति है। वाक् और मन का परस्पर आभिमुख्य अनेक स्थलों पर इसीलिए बार-बार उपवर्णीत हुआ है। इसका तात्पर्य यह जान पड़ता है कि छांदस वाणी का ध्यान—ध्यान योग से या मन की एकाग्रता से जुड़े होने पर बल देने से ही इस वाणी का अधीक महत्त्व प्रमाणित होता है। यह छांदस वाणी देवत्व की महिमा से मंडित होने के कारण अपने मूल रूप से बहुत अभ्यास से सुरक्षित रखी गयी। इसकी रक्षा के लिए ही सबसे पहले पदों का विभाजन और पदों की संधि का विचार हुआ, यहीं से व्याकरण का सूत्रपात हुआ। शतपथ ब्राह्मण में व्यक्त और अव्यक्त वाक् के स्तर को गिनाते समय यह उल्लेख मिलता है कि प्रथम स्तर की अव्यक्त वाणी सर्पों का सुसकारना या कीड़ों की भिनभिनाहट है। दूसरे स्तर पर पक्षियों का कलरव आता है; तीसरे स्तर पर पशुओं का। व्यक्त वाक् केवल मनुष्यों का है (शत. 4।1।3।16) । पाणिनि ने व्यक्त वाक् और अव्यक्त वाक् का भेद स्वीकार किया है और कहा है कि भाषा में अव्यक्त वाक् के अनुकरण के लिए प्रतीक होते हैं। इसी मानवी व्यक्त वाक् का परिष्कृत और परिशोधित रूप छांदस वाणी में उल्लेख मिलता है कि 'ऋषयो वाचमक्रत' (ऋ. 10।71)।

ब्राह्मणों के काल से ही उच्चारण के कई प्रकारों के उल्लेख मिलने लगतें है (ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि मध्यता वाक से स्तोत्रीय मंत्रों का उच्चारण करना चाहिए)। मात्राओं के सूक्ष्म भेद के बारे में श्रौत सूत्रों में उल्लेख मिलने लगते हैं। एक प्रकार से इन वैदिक उच्चारणों की परिशुद्धता की चिंता ने ही भारतीय ध्वनि-विज्ञान की सृष्टि की। ऐतरेय आरण्यक में स्वर-व्यंजन-विभेद की चर्चा मिलती है (2।2।1), जिसमें व्यंजनों को रात्रि से, स्वरों को दिन से तुलनीय बतलाया गया है; क्योंकि स्वर व्यंजक के प्रकाशक होते है। पुनः व्यंजनों को शरीर, ऊष्म को प्राण और घोषता (इसे वस्तुतः स्वरता समझना चाहिए) को आत्मा मान करके संस्कृत भाषा में

उच्चारण में अक्षर वहन की क्षमता का तारतम्य सबसे पहले सूचित किया गया है । इसी प्रकार इसी आरण्यक में (3।2।5) स्पर्श वर्णों में भूमि, ऊष्म को अंतरिक्ष और स्वर को आकाश माना गया है । यह भी उसी प्रकार के तारतम्य को सूचित करता है। इसी ब्राह्मण में (3।1।5) अक्षर-संहिता की कुछ परिभाषाएँ दी गयीं हैं, जिसमें अंतिम परिभाषा के अनुसार संहिता को न एकदम पृथक, न एकदम संयुक्त दो अक्षरों का उच्चारण माना गया है। छांदस वाक् के महत्व से संबद्ध तीसरे प्रकार के आख्यानों से छांदस वाणी दिव्यता का ही प्रतिपादन विशेष रूप में होता है और उसकी दिव्यता की अवधारणा से ही भाषा- चिंतन को एक एक मूर्त आधार मिलता है।

अंत में उन प्रकीर्ण आख्यानों की भी चर्चा आवश्यक है, जिसमें मानवी वाक् उपलक्षित है। शतपथ ब्राह्मण के एक आख्यान में (1।1।4।14।-17) ऐसी कथा आती है की मनु के पास एक वृषभ था और वाक् उस वृषभ में प्रविष्ट हो गयी थी, इसलिए असुर उस वाक् के श्वास-मात्र से प्रकम्पित हो जाते थे। असुरों ने अपने पुरोहितों - किलात और आकलित से प्रार्थना की कि आप कुछ उपाय सोचें। उन पुरोहितों ने यह बतलाया कि मनु यज्ञ में विश्वास करते हैं, इसलिए उनसे कहो की वे अपने वृष से यज्ञ करें । असुरों से मनु से यज्ञ करने के लिए कहा, किंतु इससे पहले की वृषभ यज्ञ के लिए लाया जाए, वाक् मनुपत्नी मनावी के शरीर में भाग कर चली गयी। असुरों ने फिर से मनावी को ही साधन बनकेर यज्ञ करने के लिए कहा, और तब वाक् यज्ञपत्रों में गूँज बनकर चली गयी। इस प्रकार छांदस वाणी का मानवी (लौकिक) वाक् के रूप में अवतरण कर लौकिक वाक् की गूँज में भी अमंगल के नाश की शक्ति उपलक्षित कराना ही इस आख्यान का तात्पर्य जान पड़ता है। यज्ञ के अर्थ का जब और अधिक विस्तार हुआ और यज्ञ क्रमशः ममत्त्व, त्याग से युक्त उत्सर्ग का प्रतीक बन गया तो अग्निचयन के अनुष्ठान के माध्यम से आत्मविद्या का चिंतन प्रारम्भ हुआ। अग्निचयन का दूसरा अर्थ होता है - ईंटों का चुनना और अपने को यज्ञ में स्थापित करना अर्थात् अपने को पहचानना; यज्ञ में स्थापित करके समष्टि के रूप में पहचानना। अग्नि-चयन में दो प्रकार की इष्टकाएँ (ईंट) चुनी जाती हैं—यजुष्मती और लोकम्पृणा । यजुष्मती ठीक बीच नाभि में स्थापित होती है और लोकम्पृणा उसके चारों ओर। यजुष्मती तो अव्यक्त वाणी है और लोकम्पृणा भाषा का व्यक्त संसार। इसीलिए इस लोकम्पृणा की इष्टकाओं को रखने के लिए किसी मंत्र का विधान नहीं है। इस अग्नि चयन में एक इष्टका आषाढ़ा होती है। इसको भी वाक् कहा गया है, किंतु यह वाक् हिरण्यमय पुरुष (=प्रजापति) के आधान के रूप में यजमान—पत्नी

के द्वारा रखी जाती है और इसलिए यह प्रथम स्तर वाली वाक् है जो साक्षात् आद्या शक्ति है। इस प्रकार अग्नि चयन के अनुष्ठान में वाक् के विभिन्न स्तर पुनः आकलित किए जाते हैं।

यहाँ संक्षेप में ही वैदिक वांग्मय में फैली हुयी वाक् परक सामग्री का संकलन प्रस्तुत किया गया है। इस लेख में केवल इस उद्देश्य से उस सामग्री का एक संक्षिप्त विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है कि भारतीय चिंतन की परम्परा को समझने में कुछ सहायता मिले। यह आकस्मिक नहीं था कि भाषा के संस्कार पर भारतीय विचारकों का बल इतना अधिक प्रारम्भ से ही रहा, यह भी आकस्मिक नहीं था कि भारत में व्याकरणशास्त्र को इतना अधिक महत्त्व मिला कि व्याकरण को वेदांगों में मुख कहा गया है।

यह वस्तुतः वैदिक वाक्-चिंतन की परम्परा का ही उत्तरोत्तर विकास है कि भाषा के व्यापार की सर्जनात्मक महत्ता प्रत्येक क्षेत्र में पहचानी गयी। भाषा के उच्चारण का सूक्ष्म पर्यवेक्षण किया गया; भाषा का व्याकरण प्रस्तुत किया गया और भाषा को जीवन के संस्कार के रूप में गृहीत करने के कारण लौकिक भाषा ही संस्कृत बन गयी। इसके साथ-साथ ही पौराणिक हंस-वाहिनी, सर्वशुक्ला, वीणानिनादिनी सरस्वती की अवधारणा का स्तोत्र भी हम इस वैदिक सामग्री में पा सकते हैं। तांत्रिक मंत्र-साधना और कुंडलिनी-साधना के लिए भी सूत्र यहाँ ढूँढ सकते हैं। शब्द के विवर्त के रूप में जगत् की सृष्टि के सिद्धांत का भी आरम्भ यहाँ देख सकते हैं। मूल बात यह है कि यहाँ वाक् अतिशय महत्त्व देने के पीछे भारतीय संस्कृति के आधार-रूप सत्य की प्रतिष्ठा ही है—सत्य का आग्रह ही है। भारतीय संस्कृति का सत्य किसी संस्कृति जातीय बोध या किसी संकीर्ण ऐतिहासिक बोध से ग्रस्त नहीं है। वह अखंड है, निरंतर है और विवर्त्तमान है।उसमें यदि भेद दिखलाई पड़ता है, तो वह केवल चिंता के धरातल के भेद के कारण है। इस सत्य को इसीलिए वैदिक वाक् से जोड़ा गया है। यह वैदिक वाक् परोक्ष वाक् है, किंतु इस प्रकार की परोक्ष वाक् है, जो अपरोक्ष अनुभव से जुड़ी हुई है। इसलिए जब-जब शुद्ध भाव से मनुष्य विभिन्न देश और काल में इसका चिंतन करता है, तो इस वाक् के अर्थ का उपवृंहण होता है—पुनर्नवीकरण होता है। आधुनिक स्थूल भौतिकवादी चिंतन की दृष्टि से भले ही वाक् से सम्बद्ध यह विवेच अर्थहीन लगे पर यदि हम भारतीय भाषा चिंतन को केवल प्रयोजनीय भाषा तत्त्व-विश्लेषण मान लें तो उस चिंतन का जो हमारे जीवन में सूक्ष्म और गहरा प्रभाव व्याप्त है, उसकी व्याख्या नहीं की जा सकेगी, और उस चिंतन का गौरव भी घट जाएगा।